ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 111-113

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16 YEAR- June. -2020

डॉ0 श्यौराज सिंह 'बेचैन' की रचनाओं में दलित समाज की यथार्थपरक स्थिती

गुड़िया चौधरी

शोध अध्येत्री– हिन्दी विभाग,दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा,मद्रास (तमिलनाडु), भारत

Received- 01.03.2020, Revised- 06.03.2020, Accepted - 11.03.2020 E-mail:guriachoudhary2010@gmail.com

सारांश : *नई शताब्दी के हिंदी साहित्य में हाशिए पर जिस नई अवधारणा का जन्म हुआ उनमें से एक अवधारणा है – दलित समाज की । अपने देश में हजारों साल से यह चलती आई परंपरा दिखाई देती है कि समय – समय पर सामाजिक जीवन के एक बड़े भाग को भी पीछे की ओर धकेलने का प्रयास किया गया है। देश काल के अनुसार इन वर्गों का नामकरण भी विभिन्न रूप में हुआ है । समय – समय पर इनके लिए शूद्र, अछूत, अत्यंज, म्लेच्छ, हरिजन, अनुसूचित जातियां आदि शब्दों का प्रयोग होता हुआ दिखाई देता है । साथ ही साथ इन शब्दों के साथ किसी ना किसी प्रकार से असमान भावमी छिपा नजर नहीं आता है। कल का यही समाज आज दलित नाम से जाना जा रहा है ।'अतः आधुनिक काल में इन असमान सूचक स्थान पर दलित वर्ग (Depressed Class) शब्द का प्रयोग होने लगा है। साथ ही यह शब्द शनैय– शनैय अत्यधिक प्रचलित भी हो रही है । यहाँ तक कि साहित्य में भी दलित साहित्य नामक एक नए सवर्ग की वृद्धि हुई "।'*

कुंजीभूत शब्द– दलित समाज, परंपरा, धकेलना, नामकरण, शूद्र, अछूत, अत्यंज, म्लेच्छ, हरिजन, दलित साहित्य।

गतिमान जीवन – व्यवस्था में सकारात्मक अध्याय जोड़कर, मनुष्य को बेहतर भविष्य की ओर मोड़कर और आशिव का भंडा फोड़कर जो रचना जीवन के सौंदर्य से साक्षात्कार कराये। उसे पाने के लिए लोगों को 'बेचैन' कर दे, ऐसी रचना कालजयी होती है। जीवन संवेदनाओं के साये में आकार ग्रहण करने वाले अनुभव रचना की ताकत होते हैं। रचनाकार संवेदनशील होने के साथ ही साथ सामाजिक भी होता है, सामाजिक परिस्थितियों के घात – प्रतिघात उसे प्रभावित करते हैं अतः युग चेतना के स्वर उसमें आ ही जाते है। दलित साहित्य में दलित साहित्यकार का अपना समाज और उसका स्वयं समूचा व्यक्तित्व समाविष्ट मिलता है। दलित का खुद से पृथक कोई वजूद नहीं होता, उसकी पूरी रचना प्रक्रिया में परिवार, परिवेश और भोगे गये त्रासद जुगुप्सापूर्ण जीवन का यथार्थ चित्रण अपने आप ही चित्रित होता जाता है। दलित साहित्य में दलित खुद से कटकर कुछ नहीं लिख सकता है क्योंकि कोरी कल्पना, वाक् जाल, रस–अलंकार, बनावट तथा फैंटेसी इस साहित्य में नहीं मिलता।

दलित शब्द आधुनिक है पर 'दलितपन' प्राचीन है। विभिन्न समय पर डिप्रेस्डक्लासेस, अस्पृश्य, अत्यंज, शुद्र दलित आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है, लेकिन यह सभी शब्द दलित शब्द के पुरखे हैं । अगर अपने देश के संदर्भ में यह कहा जाए कि दलित बनना एक प्रकार की जीवन स्थिति है। जिनमें सवर्ण शक्तिशाली विचारधारा के द्वारा दलितों का शोषण करने का वर्णन मिलता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत में हजारों सालों से दलित वर्ग का सामाजिक, आर्थिक शोषण ही नहीं किया गया ,बल्कि सदियों से उन्हें शिक्षा के अधिकार से भी पूरी तरह वंचित रखा गया। सामाजिक ,आर्थिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक विरासत के अधिकार होते हुए भी उन्हें अपनाने का या अपना विकास करने का मौका नहीं दिया गया। कुछ एक अपवादों को छोड़ कर आज भी कुछ एक हद तक सवर्ण उनके प्रति ऐसा सोचने के लिए मजबूर करते हैं कि उसकी अपनी संस्कृतिहीन और घटिया है। "इसे नकारा नहीं जा सकता है कि समय–समय पर सत्ताधारी वर्ग के पक्षधर इतिहासकारों ने दलितों के जीवन और संस्कृति की तरफ पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। मुख्य धारा के लेखकों ने दलितों को ही न समझा। उन्होंने उन्हें पियक्कड़, अपराधी, चोर या झगड़ालू के रूप में चित्रित किया। इसलिए भारत का साहित्य भी ब्राह्मणवादी या वर्चस्ववादी बन गया। वह दलितों की समृद्धि, संस्कृति और जीवन मूल्यों को पहचानने में पराजित हुआ। वास्तव में दलित मौलिक अभिनेता, सृष्टा, गायक और नर्तक हैं।"[2]

शहरी जीवन हो या ग्रामीण, दलित चाहे घर में हो या किसी अन्य क्षेत्र में या सेवा में हो। उसे अपनी जाति का फल किसी ना किसी रूप में भोग ना ही पड़ता है। जाती उसके लिए एक कांटे का काम करती है जो उसे पल– पल चुभती ही रहती है, टीस देती है, उद्वेलित करती है। इतना उद्वेलित कि वह यह सोचने पर मजबूर हो जाए कि क्यों हमारा जन्म इस जाति में हुआ जिसका नाम सुनते ही घुटन और नफरत लोगों के चेहरे पर आ जाती है। उनके हाव–भाव ही बदल जाते हैं । जाति के सामने, समाज में व्यक्ति के मेहनत, उसकी योग्यता, नौकरी के क्षेत्र में प्रमोशन आदि की कोई कीमत नहीं होती।

अनुरूपी लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16 YEAR- June. -2020

डॉ.श्यौराज सिंह 'बेचैन' जी की प्रायः सभी रचनाओं में चाहे वह कविता हो, कहानी हो या आत्मकथा हो आदि में हम जातिगत विडंबना एवं उससे उत्पन्न जातिगत हीनता बोध की भावना को देख सकते हैं कि कैसे 'एक दलित' समाज में रह रहे, लोगों के दोहरे व्यक्तित्व और उनके मानसिक मनोविकार से प्रताड़ित होता है। जब तक व्यक्ति की जाति पता नहीं तब तक वह एक समान है किंतु जैसे ही उसकी जाति का पता चलता है, वह अछूत बन जाता है ऐसा क्यों? यह समाज का वह कड़वा सच है जिससे दलित तमाम जीवन संघर्षरत रहता है। लेखक की रचनाओं में 'जातिगत दलित संघर्ष' को हम देख सकते हैं। लेखक की कहानी 'ओल्डएज होम' के नायक 'तेज गुलाम' के पिता 'मौजी राम'ओल्डएज होम में हो रहे जातिगत हीनता बोध से थक जाते है। वहाँ औरों की तरह ही उनके बेटे तेज गुलाम ने पूरी फीस अर्थात आश्रम में पैसे जमा किए थे, सब कुछ अच्छा भला चल रहा था लेकिन जैसे ही वहाँ के लोगों को उनकी जाति का पता चलता है। वे लोग मानो उनसे घृणा करने लगते हैं। बर्तन और कपड़े धोने वाले भी उनका काम करने से इंकार करने लगते हैं। सारी उम्र समाज में बहिष्कार को तो बर्दाश्त किया अब वृद्धावस्था में वृद्धा आश्रम में भी अतः उनके पास एक ही विकल्प बचता है आत्महत्या का। मौजी राम कहते हैं–"मैंने जाति व्यवस्था से लड़ाई में हार मान ली है। यहाँ कुछ भी और कभी नहीं सुधरेगा। बदलने का तो सवाल ही नहीं। यहाँ मानवता, सभ्यता, सहयोग – संवेदना किसी के लिए भी हो सकती है पर चमार के लिए कुछ नहीं होगा। चमार किसी के लिए मनुष्य नहीं है। ऐसे में कहीं से जहर मंगा लिया जाए और खा लिया जाए, जो दुनिया में रहेगा सो दुनिया की सोचेगा।"[3] लेखक ने कितनी मार्मिकता से दलित के संघर्ष को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है कि यह दलित की अंतरव्यथा ही है, जिसे वह सहते – सहते अंत में हार मानकर अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर लेता है। ऐसे में रहीम दास जी का यह दोहा चरितार्थ होता है कि

"रहिमन निज मन की व्यथा मन ही राखोगोय।
सुनिइटठलै हैं लोग सब बांटीना लै हैं कोय।।"

दलित का संघर्ष सिर्फ जाति तक ही सीमित नहीं है बल्कि शिक्षा के क्षेत्र में भी उसे मात दिया जा रहा हैं। एक तरफ विद्यालय – महाविद्यालय शिक्षण संस्थानों को एक सुशिक्षित समाज के नवनिर्माण में उनके योगदान को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता हैं। वहीं दूसरी तरफ इन्होंने शिक्षण को व्यवसायिक बना रखा है। ऐसे में एक गरीब दलित ऐसी संस्थाओं में कैसे प्रवेश पा सकता है।

व्यक्ति पर उसके समाज और परिवेश का पूर्ण रूप से प्रभाव पड़ता है। हम सभी इस बात से भलीभांति अवगत हैं कि कैसे एक ही समाज में व्यक्ति विशेष और निम्न व्यक्ति की स्थिति कैसी होती है। जहाँ एक वर्ग सम्मानित होता है। वही दूसरा वर्ग हिकारत भरी नजरों से देखा जाता है। ऐसे में दलित समाज की सामाजिक स्थिति की बात की जाए तो संपूर्ण दलित जाति की सामाजिक स्थिति को हम देख सकते हैं। 'मेरा बच्चपन मेरे कंधो पर' आत्मकथा के माध्यम से, समाज में लगभग एक ही जैसे कार्य करने पर भी उन में कितना अंतर होता है। इस सामाजिक विभेद के अंतरव्यथा को एक उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है। 'मरे हुए पशुओं को मालिक के घर से दूर जंगल तक ले जाना वह भी सावधानीपूर्वक कि कहीं घसीटने से पशु की खाल ना खराब हो जाए। पशु उठाने से लेकर खाल उतारने तक की खाल में कोई खोत (कट) न लगे। इस बात की पूरी सावधानी बरतनी होती थी खाल उतारना एक कला थी तो उसे पकाने की प्रक्रिया पूरी इंजीनियरिंग का काम था। खाल को उतारना और उसकोशुद्धकरकेसमाजकेलिये उपयोगी बनाना या उसे प्रयोगशाला में पकाकर शुद्ध करना कोई कमहुनरमंदी का काम नहीं था। यहां किसी भी प्रकार की किताबी मेरिट (योग्यता) नहीं चलती थी हालांकि पोथी योग्यता वाला होना, समाज की नजर में सम्मानजनक था और मुर्दा मवेशी उठाना, उनका चमड़ा उतारना अपमान जनक। एक जरूरी सेवा करने पर भी चर्मकारों को जितने घृणा और तिरस्कार मिले हैं, वह गिनाए नहीं जा सकते। डॉक्टर मनुष्य की लाश का पोस्टमार्टम करता है तो इज्जतदार होता है। भँगीन सफाई करती है तो दुत्करी जाती है। चर्मकार पशु की खाल उतारता है और समाज को प्रदूषित होने से बचाता है तो वह बहिष्कृत और अछूत बना रहता है। दोनों को ही अपने काम पेशे में महारत हासिल है तो फिर एक ही समाज में एक को सम्मान और दूसरे को अपमान क्यों? कहीं ना कहीं यह समाज जो भारतीय सामाजिक ढांचा है इसमे बदलाव जरूरी है और यह बदलाव व्यक्ति की सोच और परस्पर सद्भावना से ही निरुपित होगा।

भारतीय समाज में एक बहुत बड़ी विडंबना यह है कि व्यक्ति की पहचान उसके जातिगत सूचक शब्दों से की जाती है या तो समाज में उसके ओहदे, पद, प्रतिष्ठा को ध्यान में रखकर। ऐसा नहीं है कि यह सिर्फ उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग के भीतर है बल्कि चमारो और भंगिया में भी यह मानसिकता है कि मैं उससे ऊंची उपजाति का हूँ। समाज में जातियों को लेकर कई प्रकार विभिन्न प्रकार के कहावतें भी प्रायः सुनने को मिलते हैं जैसेः–

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16 YEAR- June. -2020

'पशुओं में गधा''पक्षियों में उल्लू' और 'जातियों में चमार' यह कहावतें सवर्णों की दलित विरोधी मानसिकता को उजागर करती है।"[4] कभी किसी ने ऐसा सोचा ही नहीं कि चमार जाति को लेकर क्यों ऐसी कहावतें और गीत बने हैं। सदियों से चलते आ रहे। ऐसी कहावतें और गीतों को सुनकर यह दलित इतने अभ्यस्त हो गए हैं, जैसे कि सब कुछ स्वभाविक हो। बर्दाश्त करना ही इनकी नियति बन गई है इनकी बुद्धि विवेक का दायरा इतना सीमित कर दिया गया है या इन्होंने मान लिया है कि यही उनकि नियति है और समय के साथ वह अपने क्रांतिकारी स्वरूप को भूल गए हैं, इनको इन कुशब्दों से जैसे 'बाप चमार बेटा दिलीप कुमार' 'गधे राज चमार''चमार की औलाद' एवं 'क्या चमार – पंचायत लगा रखी है' से प्यार हो गया है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में चमार जाति के आधार पर आश्चर्यजनक गीत भी बने हैं। जिसे इस उदाहरण से हम समझ सकते हैं

"चप्पल पहन चमाइन चले, सैंडल पहन धोबिनिया, हाय मोरे रामा बदल गई दुनिया।"[5] इस गीत से जाति द्वेष और ईर्ष्या के भाव से भरा सामाजिक लोकतंत्र का बिंब उभरता है किंतु उस समय की राजनीति की बात की जाए तो इसी वर्ग अर्थात दलित जाति की बहन मायावती का मुख्यमंत्री बनना एक चमत्कार से कम नहीं था। "डॉ. अंबेडकर ने स्वयं कहा था कि मैं महार– अछूत हूँ, वही कांशीराम ने मीडिया में कहा कि मैं पंजाब का चमार हूँ और मायावती उत्तर प्रदेश की चमारी है।"[6] ऐसे में लेखक का यह कहना कि "सात के दशक में हम बिना एतराज किए इन शब्दों को सुनते सहते रहे और अभ्यस्त हो गए जैसे पीटते – पीटते शरीर सुन्न पड़ जाता है वैसा ही हाल हमारी चेतना का रहा। जाटवों ने भी हमें छेक बांध कर रखा। उन्होंने भी हमें अपने से हमेशा नीचा समझा। यह तो जब मैं लिख पढ़ कर थोड़ा समर्थ व चर्चित हुआ तो आज सब मुझे अपना कहने लगे हैं। पर मुझे अब यह कहते कतई संकोच नहीं कि मैं नेत्रहीन गंगी और विकलांग विधाराम चमार का नाती हूं जो हाड़ तोड़ बेगार मजदूरी करने के उपरांत भी ना पूरा जिस्म ढ़क पाते थे ना अपने पेट भर पाते थे।"[7]

समाज में दरिद्रता और गरीबी के कारण दलितों को दोहरा अपमान सहना पड़ता है। एक तो सवर्ण द्वारा दिए गए अपमान भरे सूचक शब्द और दूसरी इनके जाति या दलित समाज में भी ऐसे अपमान भरे शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा। जैसेः– "श्यौराज सिंह के वंशज जो कि सगे थे गंगाराम रिश्ते में उनके ताऊ या चाचा थे, दरिद्रता से घिरेबब्बा को वे 'चाचा''बब्बा' की बजाए 'अंधा' या गंगीकहकर संबोधित करते थे यह संबोधन उनका नाम नहीं, समाजिक अपमान भरे सूचक स्थिति का प्रतीक था।"[8] जातिगत विडंबना ऐसी थी कि जहां गैर दलित जातियाँ अन्य जातियों को केवल जन्म के आधार पर श्रेष्ठ मानती थी। वही दलित खुदको जाति के कारण अछूत, नीच और खुद को कम दर्जे का इंसान मान कर स्वयं आत्महीनता का शिकार बनते थे। दोहरी हिकारत के शिकार अर्थात ना जात – बिरादरी में कोई जगह थी और ना जाति के बाहर कोई वजूद। जब्कि सवर्णों के लिए चमार जाति के लिए आंतरिक भेद नहीं थे। वह सभी चमारों को चाहे वह जाटव हो या अन्य उसे चमार से ही संबोधित करते थे किंतु चमार जाति के अपने आंतरिक जाति में भेद होते थे।

डॉ.श्यौराज सिंह 'बेचैन' की रचनाओं के चिंतन मनन से यह बोध होता है कि इन्होंने मानवीय सरोकारों के सीमांतों की विचार यात्रा कर दुनिया के दुख को दूर कर देने वाली कालजई रचनाएं लिखी है। इनकी कविताएं व्यष्टि से समष्टि की यात्रा करते हुए व्यवस्था में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को प्रेरित करती हैं। ईर्ष्या और हिंसा के कारण दुनिया में मनुष्य का जीवन दुखों से भरा पड़ा है अपनी चारों तरफ अन्याय और असुरक्षा रूपी परिवेश में व्यक्ति पल – पल भय से जी रहा है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. कल्पना गवली–प्रेमचंद तथा शैलेश मरियानी की कहानियों में दलित विमर्श पृ.सं. 51.
2. डॉ. सीबालसुब्रह्मण्यन– मैत्री पुष्पापश्विकृतो के पैरोकार पृ.सं. –17.
3. डॉ.श्यौराज सिंह 'बेचैन'–"भरोसे की बहन" कहानी संग्रह. प्रथम.संस्करण– 2010. पृ.सं. 32.
4. डॉ.श्यौराज सिंह 'बेचैन'–"मेरा बचपन मेरे कंधों पर"आत्मकथा.प्रथम.संस्करण– 2009 पृ.सं. 178.
5. डॉ.श्यौराज सिंह 'बेचैन'–"मेरा बचपन मेरे कंधों पर" आत्मकथा.प्रथम.संस्करण– 2009 पृ.सं. 179.
6. डॉ.श्यौराज सिंह 'बेचैन'–"मेरा बचपन मेरे कंधों पर" आत्मकथा.प्रथम.संस्करण– 2009 पृ.सं. 179.
7. डॉ.श्यौराज सिंह 'बेचैन'–"मेरा बचपन मेरे कंधों पर" आत्मकथा.प्रथम.संस्करण– 2009 पृ.सं. 179.
8. डॉ.श्यौराज सिंह 'बेचैन'–"मेरा बचपन मेरे कंधों पर" आत्मकथा.प्रथम.संस्करण– 2009 पृ.सं. 191.
9. डॉ.श्यौराज सिंह 'बेचैन'– " क्रौंच हूँ मैं" कविता संग्रह प्रथम.संस्करण– 1995 पृ.सं. 46.
10. डॉ.श्यौराज सिंह 'बेचैन'– " क्रौंच हूँ मैं" कविता संग्रह.प्रथम.संस्करण– 1995 पृ.सं. 21.
11. डॉ.श्यौराज सिंह 'बेचैन''नई फसल" कविता संग्रह. प्रथम.संस्करण– 2014 पृ.सं. 75.

*****